(समयसार) संवर अधिकार, पहले से शुरु (करते हैं), फिर से। **वास्तव में एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है..** उपचार से कथन कहा जाता है, वह तो जानने के लिये है, बाकी एक वस्तु को (और) दूसरी वस्तु को कोई सम्बन्ध नहीं है। एक आत्मा को और दूसरे आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। एक परमाणु और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। एक परमाणु को दूसरे परमाणु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सब इसमें आ जाता है।

वास्तव में एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है (अर्थात् एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती).. आहाहा! आहाहा! ऐसे आत्मा को देव-गुरु-शास्त्र से भी कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार सम्बन्ध तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा, कथन-भाषा कही जाती है, बाकी वस्तु नहीं है।

व्यवहार तो कथनमात्र है। आता है न, कलश-टीका में ?

बाकी एक चीज़ आत्मा है उसे दूसरे आत्मा के साथ या परमाणु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। **क्योंकि..** कोई सम्बन्ध नहीं है, इसका कारण कि **दोनों के प्रदेश भिन्न हैं..** दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। आहाहा! विकारी परिणाम और निर्विकारी वस्तु, दोनों का क्षेत्र भिन्न है। दोनों का रहने का स्थान भिन्न है। विकार अल्प प्रदेश-अंश में रहता है और पूरी चीज़ समस्त प्रदेशों में रहती है। राग, दया, दान, भक्ति आदि के प्रदेश, वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनके अलग हैं और आत्मा त्रिकाली आनन्दस्वरूप है, उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तो भिन्न हैं। आहाहा! पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तो भिन्न हैं, परन्तु इसकी पर्याय का अंश जितना, जितने में से उठे, उतने प्रदेश भी द्रव्य / आत्मा की अपेक्षा से भिन्न हैं।

उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है.. दो होकर एक सत्ता उत्पन्न नहीं होती। वस्तु स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति का परिणमन और राग का परिणमन, दोनों की सत्ता भिन्न-भिन्न है, दो का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। आहा..! यह भेदज्ञान कराया है। भगवान आत्मा ज्ञान -परिणमन में ज्ञात हो, ऐसा है; इसलिए ज्ञान परिणमन, वह आत्मा का स्वरूप है। राग है, वह जड़ है, अचेतन है; इसलिए उसके प्रदेश भिन्न होने से दो की एक सत्ता नहीं है। दो का अस्तित्व एकरूप नहीं है, दो का अस्तित्व दोरूप से भिन्न-भिन्न है। आहाहा!

(अर्थात् दोनों की सत्ताऐं भिन्न भिन्न हैं); और इस प्रकार जबकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है,.. इस प्रकार एक वस्तु आत्मा और उसके साथ दूसरे आत्मा तथा शरीरादि... आहाहा! भगवान आत्मा को और पंच परमेष्ठी को भी भिन्न सत्ता है, भिन्न अस्तित्व है, इसलिए कोई सम्बन्ध नहीं है। **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है,..** यह कारण है।

उनमें परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। आहाहा! राग का आधार, आत्मा आधेय, ऐसा नहीं है। आहाहा! दया, दान, व्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग जड़ है। जड़ का आधार और चैतन्य उसमें आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार चैतन्य की शुद्ध परिणति-निर्मल परिणति, वह आधार, आत्मा आधेय। आहाहा! यहाँ तो यह सिद्ध करना है न! नहीं तो पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं है। वर्तमान पर्याय प्रगट है, उसके अतिरिक्त की सभी पर्यायें द्रव्य में है, बाह्य नहीं, परन्तु वर्तमान पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं

है। यह क्या कहा? कि आत्मा में जो अनादि-अनन्त पर्याय है, उसमें प्रगट एक समय की पर्याय; वह पर्याय, द्रव्य में नहीं है। उसका सत्व भिन्न है। भूत और भविष्य की पर्यायें अन्तर में रही है, वह द्रव्य है। आहाहा! और वर्तमान प्रगट पर्यायरहित कभी इसका काल नहीं होता। वह प्रगट पर्याय और वस्तु दोनों की सत्ता-प्रदेश भिन्न है। आहाहा! इसलिए उनकी सत्ता भिन्न है। अरे! आहाहा!

इसलिए **परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं।** पहले व्यवहाररत्नत्रय हो तो उसके आधार से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है। शुभराग-मन्दराग पहले हो और पश्चात् सम्यग्दर्शन हो, ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! जैनदर्शन बहुत सूक्ष्म! परन्तु उस वस्तु को समझने में उसका फल भी अनन्त आनन्द है न! आहा! कठिन पड़े। पंच परमेष्ठी के साथ आधार-आधेय नहीं! इष्ट कहलाते हैं न? पंच परमेष्ठी, परन्तु पंच परमेष्ठी तो उनके लिये हैं। वह तो व्यवहार से इष्ट कहलाते हैं। बाकी आत्मा को और उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। ऐसा। अर्थात् क्या? ऊपर बहुत कहा न? एक वस्तु को (दूसरी वस्तु के साथ) प्रदेश सम्बन्ध नहीं है। एक-दूसरे को कोई सम्बन्ध नहीं है और एक-दूसरे की सत्ता भिन्न है; इसलिए आधार-आधेयसम्बन्ध भी नहीं है। **है ही नहीं,** ऐसा है। आहाहा! चाहे जितना कषाय का मन्द भाव हो, शुक्ललेश्या हो परन्तु उससे आत्मा को धर्म हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! अभी तो धन्धे के कारण यह भी फुरसत नहीं मिलती, संसार के पाप।

यहाँ तो कहते हैं कि इस कषाय की इतनी अधिक मन्दता हो, तथापि उसके आधार से सम्यग्दर्शन हो, ऐसा नहीं है अथवा उसके आधार से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! **इसलिए (प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप..** अब क्या है? वस्तु अपना स्वरूप है, ज्ञान, दर्शन, आनन्दस्वरूप वह आत्मा कहलाता है। उस स्वरूप में प्रतिष्ठा है। उसमें रहना, उसकी शोभा है और उसका इसे आधार है। आहाहा!

अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप.. आहाहा! इस पर्याय का आधार है, ऐसा कहते हैं। वस्तु है, उसका स्वरूप अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र; उस स्वरूप के आधार से वह वस्तु है। आहाहा! प्रगट पर्याय जो है, वह आत्मा का स्वरूप है। यहाँ पर्याय को आत्मा

का स्वरूप कहना है। एक ओर पर्याय को परद्रव्य कहे। नियमसार। किस अपेक्षा से? पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, इस अपेक्षा से उसे परद्रव्य कहा है, परन्तु यहाँ तो पर्याय जो है, पहली-पहली, उसे अनन्त काल में ज्ञात नहीं हुआ, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की परिणति द्वारा ज्ञात होता है; इसलिए उसे आधार और आत्मा को आधेय कहा है। आहाहा! पर्याय आधार।

यह तो सिद्ध करने से पहले आ गया था, पर्याय कर्ता, कर्म, करण और द्रव्य उसका कार्य। कर्ता-कर्म में आ गया है न? आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी तो सब गड़बड़ उठायी है। यह दरकार कहाँ है? आहाहा! एकदम वस्तु भगवान द्रव्य है न! वस्तु है न! तो वस्तु का जो स्वरूप-परिणति है, वह उसका आधार है। आहाहा! प्रगट जो पर्याय है, वह उसका आधार है, क्योंकि उस पर्याय द्वारा ज्ञात हुआ। आत्मा है, वह प्रगट पर्याय (में ज्ञात हुआ)। दूसरी भूत-भविष्य की पर्यायें अन्दर में है परन्तु वर्तमान जो पर्याय प्रगट है, उससे वह ज्ञात होता है; इसलिए वह पर्याय आधार है, द्रव्य आधेय है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है।

इसलिए ज्ञान.. ज्ञान अर्थात् आत्मा। अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप है, आधार-आधेयसम्बन्ध है। अपने स्वरूप के साथ आधार-आधेयसम्बन्ध है। इसलिए जो पर्याय प्रगट शुद्धपरिणति है, उसका आधार है, उसके आधार से ज्ञात हुआ है। ऐसा आधार। पर्याय में वह है, यह प्रतिष्ठा है। आहाहा! शुद्धस्वभाव की परिणति वर्तमान है, उसके आधार से है, इसलिए प्रतिष्ठा वहाँ रही है। द्रव्य का आधार वहाँ रहा है। आहाहा! एक ओर परिणति को बहिर्तत्त्व कहते हैं। आहा! वह किस अपेक्षा से? यहाँ कहे, परिणति के आधार से वस्तु ज्ञात होती है; इसलिए परिणति, वह आत्मा है। राग, दया, दान, व्रत, तप का, यात्रा आदि का विकल्प, वह सब जड़ है। आहाहा!

इसलिए ज्ञान.. अर्थात् आत्मा **जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में..** देखा? उसे जानने की जो वर्तमान क्रिया; प्रगट पर्यायरहित कभी नहीं होता। वह प्रगट पर्याय उसे जाननेवाली है। आहाहा! आत्मा जो कि जाननक्रियारूप अपना स्वरूप... वापस वह पर्याय अपना स्वरूप है (-ऐसा कहा है)। आहाहा! एक ओर पर्याय को परस्वरूप परद्रव्य कहे। परद्रव्य परभाव हेय है। वह किस अपेक्षा से है? त्रिकाली स्वभाव की

अपेक्षा से (कहा है)। कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो ऐसा कहते हैं कि मेरी भावना के लिये नियमसार बनाया है। आहाहा!

इसलिए ज्ञान.. अर्थात् आत्मा **जो कि जाननक्रिया..** जाननक्रिया (अर्थात्) वर्तमान पर्याय, हों! आहाहा! वह **जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है..** उसे जाननक्रिया, द्रव्य को जानने की क्रिया करे तो वह उसमें जाना; इसलिए उसका आधार है। वहाँ द्रव्य रहा हुआ है। आहाहा! द्रव्य, द्रव्य में रहा है नहीं। द्रव्य यहाँ जानन आधार (रूप क्रिया में) वह रहा हुआ है। आहाहा! यह तो फिर से लिया है। आहाहा!

उस जाननक्रिया का अर्थात् आत्मा जो अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु है, उसे जो वर्तमान पर्याय जानती है, वर्तमान पर्याय प्रगट है, वह जाननक्रिया है। क्रिया तो आयी। राग की क्रिया और पर की क्रिया नहीं। जाननक्रिया आयी। क्रिया का निषेध नहीं परन्तु कौन सी क्रिया? यह कर्ताकर्म में भी आता है। आहाहा! यह भगवान आत्मा ध्रुव नित्य है, उसकी परिणति वर्तमान में जो प्रगट पर्याय है, वह परिणति है, वह जाननक्रिया है और जाननक्रिया के आधार से आत्मा रहा हुआ है, क्योंकि उस जाननक्रिया से जानने में आया। नहीं तो 'है', ऐसी कुछ खबर नहीं थी। वस्तु थी, तथापि पर्याय में जाननक्रिया उस सन्मुख नहीं ढली तो उसके लिये कुछ थी नहीं। आहाहा!

है भगवान अन्दर परिपूर्ण, परन्तु उस ओर ज्ञान की पर्याय झुकी, तब जाननक्रिया के आधार से वह ज्ञात हुआ; इसलिए जाननक्रिया, वह आत्मा का स्वरूप है और उसके आधार से वह (जानने में आया है)। आत्मा अपने स्वरूप के आधार से ज्ञात हुआ है। आत्मा अपने स्वरूप के आधार से जानने में आया है। अपना स्वरूप यह जाननक्रिया। आहाहा! क्यों? कि **जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से,..** आहाहा! वर्तमान जो प्रगट ज्ञानपर्याय द्रव्य को जाने... आहाहा! उस जाननक्रिया का और आत्मा का अभिन्नपना है। आहाहा! राग और जगत के क्रियाकाण्ड, वे सब आत्मा से भिन्न हैं। आहाहा! जिससे ज्ञात हुआ वर्तमानपर्याय से (ज्ञात हुआ) तो वह जाननक्रियारूप परिणमन उसका स्वरूप है और इससे स्वरूप में रहा हुआ है और इससे वह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। वह जाननक्रियास्वरूप ही है। ज्ञान / जाननक्रिया वह पर्याय है और ज्ञान, वह द्रव्यवस्तु है। आहाहा! ऐसा मार्ग! किसे पड़ी है? अरे! कहाँ चले जाना है?

ज्ञान में ही है;.. जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से,.. वह जाननक्रिया में ज्ञान में ही है। इसलिए वस्तु का स्वरूप अभिन्न है। वस्तु, वह वस्तु में ही है। वस्तु के स्वरूप में है अर्थात् वस्तु, वस्तु के स्वरूप में ही है। समझ में आया? यहाँ तक तो अस्ति की बात ली है।

अब, जो कुछ दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, यात्रा के परिणाम हों, वह विकार है। जो क्रोधादि हैं, वे क्रोधादिक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका—क्रोधादि का परिणमन है, उस परिणमन में वह विकार है। आहाहा! निर्मल परिणमन में जैसे आत्मा है, वैसे उसकी परिणमन की क्रिया में वह विकार है। आहा! आत्मा में नहीं। ऐसी चीज़ पड़ी है। अभ्यास के लिये समय मिलता नहीं। पूरे दिन पाप। स्त्री, पुत्र और धन्धा। पाप के धन्धे कर-करके चले जानेवाले हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ अभी समझने में भी न आवे, (वह अनुभव में कब ले?)

मुमुक्षु : आपको गुरु धारण किया और समझ में न आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसने बहुत परिचय किया है, उसकी बात अभी नहीं है। आहाहा! परन्तु कुछ परिचय नहीं (कि) यह क्या चीज़ है? और उस चीज़ को जिस पर्याय ने जाना, वह पर्याय उसका स्वरूप है और इसीलिए वह स्वरूप और ज्ञान दोनों अभिन्न हैं। आहाहा! जिस पर्याय ने जाना, वह पर्याय और आत्मा अभिन्न एक है। आहाहा! उसमें ऐसा कहते हैं कि पर्यायमात्र हेय है, परभाव है और परद्रव्य है (नियमसार गाथा ५०)। वहाँ आगे अकेला उपादान ध्रुवस्वभाव बतलाना है। यहाँ आश्रय किसका लिया जाता है, इतना बतलाना है। परन्तु पर्याय बिना वह ज्ञात किसमें हो? कार्य तो पर्याय में है। ध्रुव तो कूटस्थ है। वह हिलता नहीं, सदृशरूप से कायम है। उसे त्रिकाली भगवान को जानने के लिये वर्तमान पर्याय प्रगट है, वही उसे जानती है। समझ में आया?

विकारीपर्याय विकार के आधार से है। **क्रोधादिक्रिया का क्रोधादि से से अभिन्नत्व..** देखा? जैसे वह आत्मा जिस पर्याय से ज्ञात हुआ, वह उसका स्वरूप है। उस स्वरूप को और आत्मा को अभिन्नपना है। वैसे ही क्रोधादि की पर्याय का परिणमन और वस्तु दोनों अभिन्न हैं। आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आत्मा

से भिन्न है। आहाहा! और उसकी विकार की परिणति से वह वस्तु अभिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

(ज्ञान का स्वरूप जाननक्रिया है,..) आत्मा का स्वरूप तो जानना है। यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है न! श्रद्धा, आनन्द अनन्त गुण का व्यक्त अंश है, वे सब अंश, वह पर्याय, द्रव्य को जानते हैं। जानता है ज्ञान। दूसरी तो एक ओर ढली हुई वस्तु है। आहाहा! आत्मा का स्वरूप जाननक्रिया है **(इसलिए ज्ञान आधेय है..)** आहाहा! आत्मा वस्तु है, वह आधेय है। आहा! रहनेवाले का रहने का स्थान वह आत्मा नहीं। रहनेवाले का रहने का स्थान ज्ञानपर्याय का स्वरूप वह उसका रहने का स्थान है। आहाहा!

(ज्ञान आधेय..) है। ज्ञान अर्थात् आत्मा। त्रिकाली ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह आधेय है अर्थात् रहनेवाला है। किसमें (रहनेवाला है)? **(जाननक्रिया आधार है।)** आहाहा! जाननक्रिया जो चैतन्य का निर्मल परिणमन (हुआ), चैतन्य का निर्मल परिणमन (हुआ), उससे वह ज्ञात हुआ है; इसलिए वह आत्मा, जाननक्रिया में है। जाननक्रिया (के) आधार से है। आहाहा! अब ऐसी बातें! इसमें क्या करना? यह करके, यह समझकर क्या करना? यह समझकर आत्मा ऐसा है, यह पर्याय है, जानन पर्याय है, उसमें आत्मा रहा हुआ है; अर्थात् उसमें आत्मा ज्ञात होता है; इसलिए रहा हुआ है। आहाहा! राग और पुण्य-पाप के परिणाम में परिणति उनकी, उसमें वह विकार रहा हुआ है। आहाहा! यह तो दूसरी-तीसरी बार पढ़ा गया है। थोड़ा चला था या नहीं? फिर राजकोटवाले आये थे, (इसलिए) फिर से (लिया है)।

ज्ञान ही आधार है। अर्थात? आहा! यह ज्ञान ही आधार, यह ज्ञान कौन? जाननक्रिया। पहले लिया न कि ज्ञान आधेय है और जाननक्रिया आधार है। वह ज्ञान अर्थात् पूरी त्रिकाली वस्तु और जाननक्रिया, वह वर्तमान परिणमन, उसके आधार से है। आहा! क्योंकि जानन परिणमन में ज्ञात हुआ है। है तो है, परन्तु इसे ज्ञात नहीं हुआ तो इसे कहाँ है? आहाहा! वस्तु तो भगवान अनन्त गुण का पिण्ड, भगवत्स्वरूप विराजता है। प्रत्येक भगवान आत्मा अन्दर भगवत्स्वरूप है। आहा! बाल-गोपाल सब। शरीर को निकाल डालो (अर्थात्) उसे न देखो, शरीर को न देखो, राग को न देखो तो सब भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य, वह उसकी परिणति में ज्ञात होता है। (इसलिए) वह परिणति उसका

स्वरूप है। इसलिए स्वरूप और परिणति, परिणति और वस्तु अभिन्न है। ज्ञान की परिणति और वस्तु अभिन्न है। आहाहा!

ज्ञान ही आधार है, क्योंकि जाननक्रिया और ज्ञान भिन्न नहीं हैं। जो जानने की पर्याय हुई, जिसने स्व को ज्ञेय बनाया, जिस ज्ञान की वर्तमान दशा ने स्व को ज्ञेय बनाया, वह जाननक्रिया और ज्ञान भिन्न नहीं है, आत्मा भिन्न नहीं है। आहाहा! धीरे-धीरे तो कहा जाता है।

मुमुक्षु : ज्ञान आधाररूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा नहीं? ज्ञान आधार है, तो वह कौन सा ज्ञान? जाननक्रिया। जिस पर्याय में आत्मा को जाना, वह ज्ञान। वह आधार है।

ज्ञान ही आधार है,.. और **जाननक्रिया और ज्ञान भिन्न नहीं हैं।** परिणति जानने की दशा है, उसमें ज्ञान रहा है और वह जानना ज्ञान का स्वरूप ही है। उस स्वरूप के आधार से ज्ञात हुआ है, इसलिए वह आधार है, ज्ञान उसमें रहा है। आहाहा! **ज्ञान ही आधार है,.. जाननक्रिया और ज्ञान भिन्न नहीं हैं।** यह परिणमन, वह ज्ञान का स्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। उस परिणमन के आधार से रहा, वह सब अभिन्न ही है। राग-द्वेष के परिणाम भिन्न हैं, वैसे यह भिन्न नहीं है। आहा!

यहाँ **ज्ञान ही आधार है,..** ऐसा कहा न। यह ज्ञान आधार है कौन? कि जाननक्रिया। ज्ञान आधार है, वह कौन? कि जाननक्रिया। कहा है न? देखो न! **ज्ञान ही आधार है, क्योंकि जाननक्रिया और ज्ञान..** अर्थात् वर्तमान जानने की परिणति और ज्ञान अर्थात् कायमी चीज़, वे **भिन्न नहीं हैं।** आहा! अब ऐसा कुछ अभ्यास में आवे नहीं, वकालात में आवे नहीं, बी.ए., एल.एल.बी. में विद्यालय में आवे नहीं। पूरे दिन पाप के धन्धे। यह वस्तु!

यहाँ तो तेरा स्वरूप तुझे जाने, वह जानने की क्रिया, वह तेरा स्वरूप और उसके आधार से तू। आहाहा! अरे! ऐसे बड़े लड़के हों, आधार मिले नहीं, बुजुर्ग हो गये हैं। मकान ठीक हो तो ठीक आधार कहलाये। आहाहा! यहाँ तो दया, दान का, भगवान की भक्ति का राग, वह आधार और आत्मा उसमें आधेय, ऐसा नहीं है। उस राग को और

त्रिकाल को जाननेवाली पर्याय... राग है, उसके अस्तित्व का ज्ञान और त्रिकाली अस्तित्व प्रभु का ज्ञान उस ज्ञानक्रिया में आधार, वह ज्ञान आधार-वह जाननक्रिया आधार; आधेय आत्मा। आहाहा! यह तो अपने वह सब आ गया है।

(तात्पर्य यह है कि ज्ञान ज्ञान में ही है।) ज्ञान अर्थात् वस्तु, ज्ञान में ही अर्थात् जाननक्रिया में ही है। आहाहा! वस्तु है, उसकी पर्याय वह उसका स्वरूप है। जाना कि यह भगवान ज्ञायक है, चैतन्य है, पूर्ण है, प्रभु है, भगवान है—ऐसा जिस ज्ञानपर्याय ने जाना, वह पर्याय ही, **(ज्ञान, ज्ञान में ही है।)** इसलिए उस आत्मा का स्वरूप ही... आत्मा कहो या ज्ञान कहो, वे दोनों ज्ञान ज्ञान में ही है। आहाहा! आत्मा अपने स्वरूप में पर्याय में है। **(ज्ञान, ज्ञान में ही है।)** ज्ञान अर्थात् त्रिकाली स्वरूप, जाननक्रिया में ही है। आहाहा!

(इसी प्रकार क्रोध, क्रोध में ही है।) मुनि है न? (इसलिए) उत्तम क्षमा के सामने का क्रोध लिया है। अरुचि। वस्तुस्वरूप है, उसकी अरुचि और राग का प्रेम; राग का प्रेम, वह क्रोध है। आहाहा! **(क्रोध, क्रोध में ही है।)** आत्मा में नहीं। आत्मा उसमें नहीं और क्रोध, आत्मा में नहीं। आत्मा, क्रोध में नहीं; क्रोध, आत्मा में नहीं। आहाहा! जैसे जाननक्रिया के भाव में आत्मा है; इसलिए ज्ञान, वह ज्ञानस्वरूप ही है, जानना वह अपना स्वरूप है। क्रोध—अरुचि, आत्मा जिसे रुचता नहीं, सुहाता नहीं - ऐसा जो क्रोध भाव, वह क्रोध, क्रोध में है। उसके आधार से आत्मा नहीं है और क्रोध, आत्मा के आधार से हुआ नहीं है। ऐसी बात है। **(क्रोध, क्रोध में ही है।)**

और क्रोधादिक में,.. अर्थात् विकार के परिणाम में। **कर्म में..** वे भावकर्म हैं। भावकर्म (अर्थात्) क्रोध, मान, माया, राग, दया, दानादि वह भावकर्म। जड़कर्म। **कर्म में..** अर्थात् जड़ (कर्म), वह भी जड़ है, ये भी जड़ हैं - विकार आदि वे जड़ हैं। यह कर्म द्रव्य जड़ है और **नोकर्म..** मन-वचन और काया से दूसरी सभी चीज़ों को नोकर्म (कहते हैं)। आहाहा! नोकर्म में आत्मा नहीं है। **(क्रोध, क्रोध में ही है।) और क्रोधादिक में, कर्म में या नोकर्म में ज्ञान नहीं है..** आत्मा नहीं है। आहाहा! विकार, विकार में ही है; इसलिए विकार और कर्म, नोकर्म ज्ञान नहीं है (अर्थात् कि) आत्मा नहीं है। आहाहा! विकार, विकार में ही है। आहाहा! इसलिए विकार में और कर्म में तथा

नोकर्म में आत्मा नहीं है। भाषा तो सादी है परन्तु परिचय नहीं होता, इसलिए ऐसा लगता है कि यह क्या बात (करते हैं) ? यह जैन परमेश्वर की बात होगी ? या यह तो दूसरा धर्म होगा ? आहाहा ! भाई ! जैनधर्म में तो सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रौषध करो (ऐसा होता है)। धूल में भी सामायिक, प्रौषध नहीं। मिथ्यात्व है।

अभी दर्शन की तो खबर नहीं होती। समकित और सामायिक... समकितरूपी परिणमन के आधार से द्रव्य है, क्योंकि जानने की पर्याय में साथ में प्रतीति है, वह कुछ द्रव्य को जानता नहीं। इसलिए जानने की पर्याय में ज्ञात हुआ है, इसलिए वह जानने की पर्याय आत्मा का स्वरूप है, इसलिए वह ज्ञान अर्थात् आत्मा का स्वरूप, पर्यायस्वरूप से भिन्न नहीं, अभिन्न है। आहाहा !

विकारी परिणाम में, जड़कर्म में और नोकर्म में आत्मा नहीं और आत्मा में **क्रोधादिक, कर्म या नोकर्म नहीं हैं..** पारस्परिक लिया है। आहा ! **क्योंकि उनके परस्पर अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता होने से..** भाषा देखो ! **उनके परस्पर..** आत्मा में जो दया, दान, व्रत के परिणाम हों और आत्मा जो जाननक्रिया से ज्ञात हो, इन दोनों का स्वरूप विपरीत है। आहाहा ! **क्योंकि उनके..** उन्हें अर्थात् पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा यह भाव... आहाहा ! और आत्मा। कर्म, नोकर्म तो ठीक जड़ है। **उनके परस्पर अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता होने से..** आहाहा ! व्यवहाररत्नत्रय का राग और भगवान जाननक्रिया से ज्ञात हो, वह स्वरूप, दोनों विपरीत है। आहाहा ! विपरीत है तो विपरीत भाव से आत्मा ज्ञात हो (-ऐसा नहीं है)। थोड़ा रखो, व्यवहार का थोड़ा रखो (ऐसा लोग कहते हैं)। शास्त्र में आवे, आवे परन्तु वह तो एक निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा होता है)। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि व्यवहार आवे, वह निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा है)। आहाहा ! (व्यवहार के सम्बन्ध में) ऐसा लिखा है (कि) 'ऐसा नहीं है' व्यवहार हुआ, उसमें 'ऐसा नहीं है', परन्तु वहाँ निमित्त का ज्ञान कराना है। आहाहा !

उनके.. अर्थात् कि दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को और आत्मा के स्वरूप को अर्थात् ज्ञान से आत्मा ज्ञात हुआ, उस ज्ञानस्वरूप को **उनके परस्पर अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता होने से..** उन दोनों में अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता है। आहाहा ! जाननक्रिया जो जानने की-देखने की, स्व को देखकर जानने की-देखने की क्रिया हुई, वह तो आत्मा

ही है, क्योंकि आत्मा का स्वरूप है और उसके आधार से तो ज्ञान हुआ, इसलिए वह आधार है। उस पर्याय को और क्रोधादि, रागादि, दया-दान के परिणाम तो अन्दर में परस्पर है ? **अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता..** आहाहा! अत्यन्त स्वरूप विपरीत है। अरे! ऐसा किस प्रकार का धर्म ? उसमें अब यह भेदज्ञान का संवर अधिकार। आहाहा! गजब अधिकार है।

(ज्ञान का स्वरूप और क्रोधादिक तथा कर्म-नोकर्म का स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होने से).. ज्ञान का स्वरूप तो जाननस्वरूप है और विकार का स्वरूप तो मलिनता, दुःखरूप है। अज्ञानमय है, ऐसा आयेगा, आयेगा। ज्ञान को और अज्ञान को आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं है। अन्तिम लाईन में आयेगा। इस पैराग्राफ की अन्तिम लाईन। भगवान आत्मा की वर्तमान जाननक्रिया का स्वरूप है, उसमें वह ज्ञात हुआ इसे, और रागादि हैं, वे अज्ञान हैं। आहाहा! यह ज्ञानस्वरूप है। जो पर्याय में ज्ञात हुआ, उस पर्याय में ज्ञात होता है। वह उसका स्वरूप है। उस स्वरूप में ही स्वयं आत्मा है। उसे और क्रोध को अर्थात् अज्ञान है। यह ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! द्रव्य से ज्ञान, गुण से भी ज्ञान और पर्याय से भी ज्ञान। यह ज्ञानस्वरूप है और क्रोधादि दूसरी चीज़ अज्ञान है। उसमें यह ज्ञान नहीं है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम में ज्ञान नहीं है, वहाँ आत्मा नहीं है; वह तो अनात्मा है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। भाषा सादी है। टीका बहुत सादी भाषा (में है)। कितने बोल कहे! आहाहा!

(ज्ञान का स्वरूप और क्रोधादिक तथा कर्म-नोकर्म का स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होने से).. आहा! आत्मा में राग, दया, दान, व्रत, पूजा का विकल्प उठे, वह आत्मा नहीं है, वह जड़ है और भगवान (आत्मा) ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञानस्वरूप है, अर्थात् ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात हुआ, इसलिए ज्ञानपर्याय भी आत्मा का ही स्वरूप है और ये रागादि हैं वे जड़स्वरूप हैं। दोनों अत्यन्त भिन्न स्वरूप हैं। अरे! लो, ऐसा सुने नहीं और (शोर मचाये), व्यवहार उत्थापित करते हैं, एकान्त है, बेचारे ऐसा कहें। अरे भाई! आहा! मुश्किल से सत्य बाहर आया, तब आरोप देने लगे। एकान्त.. एकान्त.. एकान्त.. पुकारते हैं। करुणादीप (मासिक पत्र) आता है (उसमें) यहाँ का एक-एक विरुद्ध (आता है)। जैनदर्शन (तत्कालीन समाचार पत्र) में थोड़ा दूसरा डालते हैं। वस्तु का ख्याल नहीं है, बहुत गूढ़ वस्तु है। आहाहा!

यहाँ आत्मा है, उसमें यह ज्ञान की जानने की परिणति है। वह जानने की परिणति द्वारा ज्ञात हुआ। आत्मा, राग द्वारा ज्ञात नहीं हुआ; ज्ञान की परिणति द्वारा ज्ञात हुआ; इसलिए वह परिणति इस ज्ञान का स्वरूप है और इसलिए वह आत्मा का स्वरूप अभिन्न है। साथ में दया, दान का राग उठा, वह राग का परिणमन विकार है और वह क्रोधादि का परिणमन, क्रोध है। विकार का परिणाम, वह विकार है। उसे जड़पना है, उसे अज्ञानपना है। आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय से ज्ञानस्वरूप है। पर्याय से जाना न, इसलिए। पर्याय से द्रव्य ज्ञात हुआ; इसलिए जाननक्रिया, वह आत्मा का स्वरूप है।

मुमुक्षु : सम्यग्ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्ज्ञान की ही बात है न, अन्य बात है ही नहीं। आहा..हा..!

(ज्ञान का स्वरूप और क्रोधादिक तथा कर्म-नोकर्म का स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होने से) उनके परमार्थभूत आधाराधेयसम्बन्ध नहीं है। लो! आहाहा! राग का कण मन्द हो तो आत्मा का ज्ञान हो, आत्मा की ओर ढले—ऐसा जरा भी नहीं है, कहते हैं। आहाहा! कहाँ गया? जीतू नहीं? दूसरी जाति है यह दो। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! जन्म-मरण रहित की बातें अलग हैं और जन्म-मरण कर-करके अनादि से मर गया है। आहाहा! नरक के, निगोद के भव कर-करके (मर गया है)। आहाहा! जिनके दुःख देखकर देखनेवाले को रोना आया है। ऐसे दुःख अनन्त बार भोगे हैं, बापू! अभी तू भूल गया है। आहाहा! नरक और निगोद के दुःख! निगोद में हीन (दशा का दुःख है)। नरक में संयोग की अपेक्षा से दुःख कहा जाता है और निगोद में हीनदशा की अपेक्षा से दुःख कहा जाता है। अत्यन्त हीनदशा, अक्षर का अनन्तवाँ भाग रह गया। आहाहा! आनन्द और ज्ञान और कहीं (नहीं)। आनन्द तो जरा भी नहीं। ज्ञान अनन्तवें भाग रह गया। आहाहा! और संयोगी दुःख आवे (तो) लोग उसे देखे।

मुमुक्षु : व्यवहार कथनमात्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कथनमात्र है, कहा नहीं? दूसरा नय है परन्तु वह कथनमात्र है। जाना (कि) ऐसा कहते हैं। बस! इतना। उसमें वह आदरनेयोग्य है नहीं। आहाहा!

आहा! इसलिए **परमार्थभूत आधाराधेयसम्बन्ध नहीं है।** किसके साथ?

जाननक्रिया जो आत्मा की परिणति है, उससे जानने में आया, वह जाननक्रिया और क्रोध की जो परिणति, क्रोध की क्रिया, मान की क्रिया; इन दोनों को अत्यन्त स्वरूप विपरीत है, इसलिए दोनों में आधार-आधेयसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! परन्तु आवे, किसी जगह (आवे), व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। जयसेनाचार्यदेव में तो बहुत आता है। जयसेनाचार्यदेव में! वह तो निमित्त है, उसका ज्ञान कराया है। एक वस्तु है, उसका ज्ञान (कराया है), बाकी वह तो उसका स्वरूप ही नहीं है। स्वरूप तो उस जाति का जो आनन्द और ज्ञान है, उसका परिणमन हो, वह उसकी जाति है। राग का परिणमन तो कुजाति है। यहाँ तो उसे जड़ कहा है। जड़ है। 'चिद्रूप' है न? श्लोक आयेगा न? 'चिद्रूप जड़तो' यह श्लोक ही आयेगा। '**चिद्रूप्यं जड़रूपतां च दधतोः**' आहा! (१२६) कलश में है।

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु, उसे जानने की परिणति से जाना। आहाहा! वह चैतन्य है। भले परिणति पर्याय है परन्तु वह चैतन्य है। वह चैतन्य का स्वरूप है और दया, दान का विकल्प उठे, वह जड़ स्वरूप है। एक ओर जड़ तथा एक ओर आत्मा। आहाहा! और इसमें भी कहेंगे **ज्ञान तथा अज्ञान में (क्रोधादिक में) आधाराधेयत्व नहीं है।** अन्त में कहेंगे। इस पैराग्राफ का अन्तिम शब्द है। आहाहा!

यह तो फिर से लेने को कहा था, इसलिए फिर से लिया। **और जैसे ज्ञान का स्वरूप जानन..** देखी भाषा? आत्मा का स्वरूप तो जाननक्रिया है। आहाहा! इस आत्मा का स्वरूप तो जाननक्रिया है। जो प्रगट पर्याय जानती है, वह आत्मा की जाननक्रियास्वरूप है। आहाहा! **ज्ञान का स्वरूप जाननक्रिया है, उसी प्रकार (ज्ञान का स्वरूप) क्रोधादि-क्रिया भी हो,..** राग भी है, ऐसा किसी प्रकार से सिद्ध नहीं होता, किसी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता। आहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं, लो! व्यवहार से भी स्थापित किया जा सकता है या नहीं? किसी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता। देखो!

(क्रोधादिक का स्वरूप) जाननक्रिया भी हो, ऐसा किसी भी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता;.. भाषा क्या है? किसी प्रकार से। इसमें किसी में व्यवहार से भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बात है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। भगवान जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ भगवान ने आत्मा देखा, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द

की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसका परिणमन उसे जाननेवाला हुआ, वह जानने का हुआ, वह तो उसका स्वरूप है, कहते हैं। उस स्वरूप द्वारा जानने में आया, इसलिए वह स्वरूप है। आहाहा! पर्याय उसका स्वरूप है। दूसरी जगह ऐसा कहते हैं कि पर्याय, वह परद्रव्य है। आहाहा! आश्रय, उसकी ओर का लक्ष्य छुड़ाना है। त्रिकाली पर दृष्टि करानी है। इसका परिणाम, परन्तु त्रिकाल पर दृष्टि है।

रात्रि को कहा था कि समय-समय की पर्याय हो, जिस समय पर्याय हो, वह हो। एक बात। और वह भी निर्मल परिणति, जिस समय निर्मल परिणति हो, उस समय वह ज्ञात हुआ। इसका अर्थ कि सबमें जिस समय जो पर्याय हो वह और जाननक्रिया भी जिस समय में जाननक्रिया हो वह, उस आत्मा को जानने की भी जिस समय में हो, उस क्रिया का समय है न? इसलिए वास्तव में तो अवसर में परिणाम होते हैं कि जाननक्रिया से ज्ञात हो, ऐसा होने पर उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। इसका सार यह है। आहाहा! जिसे जानना है, वह जाननक्रिया वह आया, इसका स्वरूप आत्मा स्वयं जानता है। आहा! क्योंकि प्रत्येक अनुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है। उसमें भी उसका तात्पर्य तो वीतरागता कहना है। वीतरागता किस प्रकार होती है? जिस समय में जो होगा, उस पर नजर रखने से नहीं होती। आहाहा! और स्वरूप को जानने की जाननक्रिया, वह भी जिस समय में होनी है, वह होगी। ऐसा निर्णय जिसे करना हो, उसे तो ज्ञायकभाव पर जाना पड़ेगा। जिसमें से वीतरागभाव प्रगटे, वीतरागभाव प्रगटे, उसमें जाना पड़ेगा। आहाहा! गजब बात है! यह तो पूरी दुनिया छोड़कर अकेला होना हो, उसकी बात है। अकेला है। आहाहा! कहाँ है कुछ? है अनन्त परन्तु इसमें। दोनों की सत्ता ही भिन्न है, कहा न? राग की, दया, दान की सत्ता और आत्मा की सत्ता ही भिन्न-भिन्न है। आहाहा! तो दया, दान, व्रत, पूजा के परिणाम का आधार और आत्मा (उनसे) ज्ञात हो, (इसका) निषेध है। कहो, चिमनभाई! आहाहा! यह शास्त्र कहीं सोनगढ़ का है? आहाहा! सोनगढ़ में (प्रकाशित हुआ है।)

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। प्रभु सीमन्धर भगवान (विराजते हैं), उनकी यह वाणी है। अरे, जगत के जीवो! समयसार की भेंट रह गयी। लोगों को भेंट दी, भेंट। आहा! भाई! एक बार तू यह समयसार ले। ले अर्थात् कि परिणति में आत्मा को ले ले। आहाहा! आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए, भाई! यह... बड़ी

क्रिया और अपवास और वर्षीतप और बड़े २५-५०-१०० लड़के सामायिक लेकर करने बैठे। यह सब कुछ धूल में भी धर्म नहीं है, अधर्म है, अधर्म का पोषण है। आहाहा!

जैसे ज्ञान का स्वरूप जाननक्रिया है.. (अर्थात् कि) शुद्धपरिणति। **उसी प्रकार (ज्ञान का स्वरूप) क्रोधादिक्रिया भी हो, अथवा जैसे क्रोधादि का स्वरूप क्रोधादिक्रिया है..** क्रोधादिक्रिया लेनी है न? यहाँ जाननक्रिया है और वहाँ क्रिया लेनी है। **उसी प्रकार (क्रोधादिक का स्वरूप) जाननक्रिया भी हो, ऐसा किसी भी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता;..** यहाँ वजन है। आचार्य महाराज का यहाँ वजन है। ऐसा किसी भी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता। किसी में भी सब आ गया। व्यवहार भी (आ गया)। आहाहा! विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)